

Chapter चार

गजेन्द्र का वैकुण्ठ गमन

इस अध्याय में गजेन्द्र तथा घड़ियाल के पूर्व जन्मों का वर्णन हुआ है। इसमें बताया गया है कि किस तरह घड़ियाल गन्धर्व और गजेन्द्र भगवान् का पार्षद बना।

गन्धर्व लोक में हूहू नाम का एक राजा रहता था। एक बार जब वह स्त्रियों के साथ जल-क्रीड़ा कर रहा था, तो उसने स्नान करते हुए देवल ऋषि का पाँव खींच लिया। इस पर ऋषि अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और उसे तुरन्त घड़ियाल बनने का शाप दे डाला। जब हूहू को इस तरह शाप मिल गया तो वह अत्यन्त दुखी हुआ और उसने ऋषि से क्षमा माँगी। ऋषि को दया आ गई; अतएव उन्होंने वर दिया कि जब गजेन्द्र का उद्धार भगवान् द्वारा होगा तो वह मुक्त हो जायेगा। इस तरह जब नारायण ने घड़ियाल को मार डाला तो उसका उद्धार हो गया।

भगवान् की कृपा से जब गजेन्द्र वैकुण्ठ में भगवान् का पार्षद बना तो उसे चार हाथ मिल गये। यह उपलब्धि *सारूप्य मुक्ति* कहलाती है—नारायण के ही समान आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करने की मुक्ति। यह गजेन्द्र पूर्व-जन्म में भगवान् विष्णु का महान् भक्त रहा था। उसका नाम इन्द्रद्युम्न था और वह तामिल देश का राजा था। वैदिक सिद्धान्तों का पालन करते हुए इस राजा ने गृहस्थ-जीवन त्याग दिया और वह मलयाचल पर्वत में एक छोटी सी कुटी बना कर मौन भाव से भगवान् की सदैव पूजा करने लगा। एक बार अगस्त्य ऋषि अपने अनेक शिष्यों समेत इन्द्रद्युम्न के आश्रम पधारे, किन्तु भगवान् के ध्यान में तल्लीन रहने के कारण वह राजा उनका उचित सत्कार न कर सका। अतएव ऋषि अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और उन्होंने राजा को आलसी हाथी बनने का शाप दे डाला। इस शाप के अनुसार

राजा ने हाथी के रूप में जन्म लिया और वह भक्ति के अपने पहले सारे कार्यों को भूल गया। तो भी अपने हाथी जन्म में, जब घड़ियाल ने उस पर घोर आक्रमण किया, तो उसे अपना भक्ति-पूर्ण पूर्वजीवन याद आया और उस जीवन में उसने जो स्तुति सीखी थी उसका स्मरण किया। इस स्तुति के कारण उसे पुनः भगवत्कृपा प्राप्त हो गई। इस तरह तुरन्त उसका उद्धार हो गया और वह भगवान् का एक चतुर्भुज पार्षद बन गया।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने इस अध्याय की समाप्ति हाथी के सौभाग्य-वर्णन के साथ की है। उनका कथन है कि गजेन्द्र-मोक्ष की कथा सुनने से मनुष्य को भी उद्धार का अवसर प्राप्त हो सकता है। शुकदेव स्वामी इसका स्पष्टता-पूर्ण वर्णन करते हैं और इस प्रकार अध्याय समाप्त हो जाता है।

श्रीशुक उवाच

तदा देवर्षिगन्धर्वा ब्रह्मेशानपुरोगमाः ।

मुमुचुः कुसुमासारं शंसन्तः कर्म तद्धरेः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तदा—उस अवसर पर (जब गजेन्द्र का उद्धार हो गया); देव-ऋषि-गन्धर्वाः—देवता, ऋषि तथा गन्धर्व; ब्रह्म-ईशान-पुरोगमाः—ब्रह्मा तथा शिवजी इत्यादि ने; मुमुचुः—वर्षा की; कुसुम-आसारम्—फूलों का आवरण; शंसन्तः—प्रशंसा करते हुए; कर्म—दिव्य कर्म; तत्—उस (गजेन्द्र मोक्षण); हरेः—भगवान् का।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब भगवान् ने गजेन्द्र का उद्धार कर दिया तो सारे ऋषियों, गन्धर्वों तथा ब्रह्मा, शिव इत्यादि देवताओं ने भगवान् के इस कार्य की प्रशंसा की और भगवान् तथा गजेन्द्र दोनों के ऊपर पुष्पवर्षा की।

तात्पर्य : इस अध्याय से स्पष्ट है कि देवल ऋषि, नारद मुनि तथा अगस्त्य मुनि जैसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी कभी-कभी किसी को शाप देते हैं। किन्तु ऐसे महापुरुषों का शाप वास्तव में वरदान होता है। पिछले जन्म में घड़ियाल एक गन्धर्व था तथा गजेन्द्र राजा इन्द्रद्युम्न था—ये दोनों शापित हुए, किन्तु दोनों को लाभ मिला। इन्द्रद्युम्न को हाथी के जन्म में मोक्ष मिला और वह वैकुण्ठ में भगवान् का पार्षद बना तथा घड़ियाल को उसका गन्धर्व पद पुनः मिल गया। हम प्रायः देखते हैं कि बड़े सन्त या भक्त का शाप, शाप न रहकर वरदान होता है।

नेदुर्दुन्दुभयो दिव्या गन्धर्वा ननृतुर्जगुः ।

ऋषयश्चारणाः सिद्धास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

नेदुः—बजने लगीं; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ; दिव्याः—स्वर्ग लोक के आकाश में; गन्धर्वाः—गन्धर्व लोक के वासी; ननृतुः—नाचने लगे; जगुः—तथा गाने लगे; ऋषयः—सारे ऋषि; चारणाः—चारण लोक के निवासी; सिद्धाः—सिद्ध लोक के वासियों ने; तुष्टुवुः—स्तुति की; पुरुष-उत्तमम्—पुरुषोत्तम भगवान् की।

स्वर्ग लोक में दुन्दुभियाँ बजने लगीं, गन्धर्वलोक के वासी नाचने और गाने लगे तथा महान् ऋषियों और चारणलोक एवं सिद्धलोक के निवासियों ने भगवान् पुरुषोत्तम की स्तुतियाँ कीं।

योऽसौ ग्राहः स वै सद्यः परमाश्चर्यरूपधृक् ।

मुक्तो देवलशापेन हूहूर्गन्धर्वसत्तमः ॥ ३ ॥

प्रणम्य शिरसाधीशमुत्तमश्लोकमव्ययम् ।

अगायत यशोधाम कीर्तन्यगुणसत्कथम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; असौ—वह; ग्राहः—घड़ियाल बन गया; सः—वह; वै—निस्सन्देह; सद्यः—तुरन्त; परम—अत्यन्त सुन्दर; आश्चर्य—अद्भुत; रूप-धृक्—रूप धारण किये (अपने मूल गन्धर्व रूप को); मुक्तः—मुक्त हो गया; देवल-शापेन—देवल ऋषि के शाप से; हूहूः—हूहू नामक; गन्धर्व-सत्तमः—गन्धर्वों में श्रेष्ठ; प्रणम्य—प्रणाम करके; शिरसा—सिर के बल; अधीशम्—परम प्रभु को; उत्तम-श्लोकम्—श्रेष्ठ श्लोकों द्वारा पूजा किया जाने वाला; अव्ययम्—नित्य; अगायत—उच्चारण करने लगा; यशः-धाम—भगवान् की महिमा; कीर्तन्य-गुण-सत्-कथम्—जिसकी दिव्य लीलाएँ तथा गुण यशस्वी हैं।

गन्धर्वों में श्रेष्ठ राजा हूहू देवल मुनि द्वारा शापित होने के बाद घड़ियाल बन गया था। अब भगवान् द्वारा उद्धार किये जाने पर उसने एक सुन्दर गन्धर्व का रूप धारण कर लिया। यह समझकर कि यह सब किसकी कृपा से सम्भव हो सका, उसने तुरन्त सिर के बल प्रणाम किया और श्रेष्ठ श्लोकों से पूजित होने वाले परम नित्य भगवान् के लिए उपयुक्त स्तुतियाँ कीं।

तात्पर्य : जिस तरह गन्धर्व घड़ियाल बना उसकी कथा आगे कही जायेगी। जिस शाप से गन्धर्व को यह पद मिला था वह वास्तव में शाप नहीं था अपितु वरदान था। जब किसी को कोई सन्त पुरुष शाप दे तो अप्रसन्न नहीं होना चाहिए क्योंकि अप्रत्यक्ष रूप से उसका यह शाप वरदान होता है। इस गन्धर्व में स्वर्गलोक के निवासी की मानसिकता थी। इसे भगवान् का पार्षद बनने में लाखों वर्ष लगते। किन्तु देवल ऋषि के शाप से वह घड़ियाल बन गया और एक ही जीवन में उसे साक्षात् भगवान् का दर्शन करने तथा वैकुण्ठ जाकर भगवान् का पार्षद बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसी प्रकार गजेन्द्र का भी उद्धार भगवान् ने किया जब वह अगस्त्य मुनि के शाप से मुक्त हो गया।

सोऽनुकम्पित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्य तम् ।

लोकस्य पश्यतो लोकं स्वमगान्मुक्तकिल्बिषः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (राजा हूहू); अनुकम्पितः—कृपा पात्र बनकर; ईशेन—भगवान् द्वारा; परिक्रम्य—परिक्रमा करके; प्रणम्य—प्रणाम करके; तम्—उसको; लोकस्य—सारे देवताओं तथा मनुष्यों के; पश्यतः—देखते-देखते; लोकम्—लोक को; स्वम्—अपने; अगात्—वापस चला गया; मुक्त—मुक्त होकर; किल्बिषः—अपने पापों के फलों से।

भगवान् की अहैतुकी कृपा से अपने पूर्व रूप को पाकर राजा हूहू ने भगवान् की प्रदक्षिणा की और उन्हें नमस्कार किया। तब ब्रह्मा इत्यादि समस्त देवताओं की उपस्थिति में वह गन्धर्व लोक लौट गया। वह सारे पापफलों से मुक्त हो चुका था।

गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद्विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात् ।

प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

गजेन्द्रः—हाथियों का राजा गजेन्द्र; भगवत्-स्पर्शात्—भगवान् के हाथों का स्पर्श पाने से; विमुक्तः—तुरन्त मुक्त हो गया; अज्ञान-बन्धनात्—सब प्रकार के अज्ञान से, विशेषतया देहात्मबुद्धि से; प्राप्तः—पाकर; भगवतः—भगवान् के; रूपम्—वही शारीरिक स्वरूप; पीत-वासाः—पीले वस्त्र पहने; चतुः-भुजः—तथा चार भुजाओं वाला, जिनमें वह शंख, चक्र, गदा तथा कमल लिए था।

चूँकि गजेन्द्र का प्रत्यक्ष स्पर्श भगवान् ने अपने करकमलों से किया था अतएव वह समस्त भौतिक अज्ञान तथा बन्धन से तुरन्त मुक्त हो गया। इस प्रकार उसे सारूप्य-मुक्ति प्राप्त हुई जिसमें उसे भगवान् जैसा ही शारीरिक स्वरूप प्राप्त हुआ। वह पीत वस्त्र धारण किये चार भुजाओं वाला बन गया।

तात्पर्य : यदि किसी पर भगवान् की कृपा होती है और वे उसका स्पर्श अपने हाथ से कर देते हैं, तो उसका शरीर आध्यात्मिक बन जाता है और वह भगवद्धाम वापस जा सकता है। जब भगवान् ने गजेन्द्र का स्पर्श किया, तो उसे आध्यात्मिक शरीर प्राप्त हो गया। ध्रुव महाराज को भी आध्यात्मिक शरीर इसी प्रकार मिला था। *अर्चना पद्धति* में भगवान् का शरीर स्पर्श करने का सुअवसर मिलता है, जिससे आध्यात्मिक शरीर प्राप्त होने का सौभाग्य मिल सकता है और भगवद्धाम वापस जाया जा सकता है। न केवल भगवान् के शरीर का स्पर्श करके, अपितु उनकी लीलाओं का श्रवण करके, उनकी महिमाओं का गान करके, उनके चरणों का स्पर्श करके तथा उनकी पूजा करके—दूसरे शब्दों में भगवान् की किसी भी प्रकार से सेवा करके—मनुष्य भौतिक कल्मष से शुद्ध हो जाता है। भगवान् का स्पर्श पाने का यह परिणाम होता है। जो शुद्ध भक्त है (*अन्याभिलाषिताशून्यम्*), जो शास्त्र एवं भगवान्

के वचनों के अनुसार कर्म करता है, वह निश्चित रूप से शुद्ध हो जाता है। वह भी गजेन्द्र की तरह आध्यात्मिक शरीर धारण करके भगवद्धाम लौट जाता है।

स वै पूर्वमभूद्राजा पाण्ड्यो द्रविडसत्तमः ।

इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सः—वह हाथी (गजेन्द्र); वै—निस्सन्देह; पूर्वम्—पूर्वजन्म में; अभूत्—था; राजा—राजा; पाण्ड्यः—पाण्ड्य नामक देश का; द्रविड-सत्-तमः—द्रविड़ देश (दक्षिण भारत) में उत्पन्न होने वालों में श्रेष्ठ; इन्द्रद्युम्नः—महाराज इन्द्रद्युम्न; इति—इस प्रकार; ख्यातः—प्रसिद्ध; विष्णु-व्रत-परायणः—भगवान् की सेवा में सदैव लगा रहने वाला प्रथम कोटि का वैष्णव।

यह गजेन्द्र पहले वैष्णव था और द्रविड़ (दक्षिण भारत) प्रान्त के पाण्ड्य नामक देश का राजा था। अपने पूर्व जन्म में वह इन्द्रद्युम्न महाराज कहलाता था।

स एकदाराधनकाल आत्मवान्

गृहीतमौनव्रत ईश्वरं हरिम् ।

जटाधरस्तापस आप्लुतोऽच्युतं

समर्चयामास कुलाचलाश्रमः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, इन्द्रद्युम्न महाराज; एकदा—एक बार; आराधन-काले—देव पूजा के समय; आत्मवान्—अत्यन्त मनोयोग से भक्ति में लगा; गृहीत—धारण किये; मौन-व्रतः—किसी से न बोलने का अनुष्ठान; ईश्वरम्—परम नियन्ता; हरिम्—भगवान् को; जटा-धरः—जटाधारी; तापसः—तपस्या में तल्लीन; आप्लुतः—भगवत्प्रेम में तल्लीन; अच्युतम्—अच्युत भगवान् को; समर्चयाम् आस—पूजा कर रहा था; कुलाचल-आश्रमः—कुलाचल (मलयपर्वत) स्थित उसका आश्रम।

इन्द्रद्युम्न महाराज ने गृहस्थ जीवन से वैराग्य ले लिया और मलय पर्वत चला गया जहाँ उसका आश्रम एक छोटी सी कुटिया के रूप में था। उसके सिर पर जटाएँ थीं और वह सदैव तपस्या में लगा रहता था। एक बार वह मौन व्रत धारण किये भगवान् की पूजा में तल्लीन था और भगवत्प्रेम के आनंद में डूबा हुआ था।

यदृच्छया तत्र महायशा मुनिः

समागमच्छिष्यगणैः परिश्रितः ।

तं वीक्ष्य तूष्णीमकृतार्हणादिकं

रहस्युपासीनमृषिश्रुकोप ह ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

यदृच्छया—अपनी इच्छा से (बिना बुलाये); तत्र—वहाँ; महा-यशाः—सुविख्यात; मुनिः—अगस्त्य मुनि; समागमत्—पधारे; शिष्य-गणैः—अपने शिष्यों से; परिश्रितः—घिरे हुए; तम्—उसको; वीक्ष्य—देखकर; तूष्णीम्—मौन; अकृत-अर्हण-

आदिकम्—स्वागत-सत्कार किये बिना; रहसि—एकान्त स्थान में; उपासीनम्—ध्यान में बैठे; ऋषिः—ऋषि; चुकोप—अत्यन्त क्रुद्ध हुआ; ह—ऐसा हुआ कि ।

जब इन्द्रद्युम्न महाराज भगवान् की पूजा करते हुए ध्यान में तल्लीन थे तो अगस्त्य मुनि अपनी शिष्य-मण्डली समेत वहाँ पधारे। जब मुनि ने देखा कि राजा इन्द्रद्युम्न एकान्त स्थान में बैठकर मौन साधे हैं और उनके स्वागत के शिष्टाचार का पालन नहीं कर रहे हैं, तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए।

तस्मा इमं शापमदादसाधु-

रयं दुरात्माकृतबुद्धिरद्य ।

विप्रावमन्ता विशतां तमिस्रं

यथा गजः स्तब्धमतिः स एव ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तस्मै—महाराज इन्द्रद्युम्न को; इमम्—यह; शापम्—शाप; अदात्—दे डाला; असाधुः—अभद्र; अयम्—यह; दुरात्मा—नीच व्यक्ति; अकृत—अशिक्षित; बुद्धिः—उसकी बुद्धि; अद्य—अब; विप्र—ब्राह्मण का; अवमन्ता—अपमान करने वाला; विशताम्—प्रवेश करे; तमिस्रम्—अंधकार में; यथा—जिस तरह; गजः—एक हाथी; स्तब्ध-मतिः—कुन्द बुद्धि वाला; सः—वह; एव—निस्सन्देह ।

तब अगस्त्य मुनि ने राजा को यह शाप दे डाला—“इन्द्रद्युम्न तनिक भी भद्र नहीं है। नीच तथा अशिक्षित होने के कारण इसने ब्राह्मण का अपमान किया है। अतएव यह अंधकार प्रदेश में प्रवेश करे और आलसी मूक हाथी का शरीर प्राप्त करे।”

तात्पर्य : हाथी अत्यन्त बलिष्ठ होता है, उसका शरीर अत्यन्त भारी होता है, वह कठोर श्रम कर सकता है और प्रचुर भोजन खा सकता है; फिर भी उसकी बुद्धि उसके आकार तथा बल के अनुरूप नहीं होती। इस तरह इतनी शारीरिक शक्ति होते हुए भी वह मनुष्य का चाकर बनकर काम करता है। अगस्त्य मुनि ने यही ठीक समझा कि इस राजा को हाथी बनने का शाप दिया जाये क्योंकि इस शक्तिशाली राजा ने मेरा स्वागत उस रूप में नहीं किया जैसा कि ब्राह्मण का होना चाहिए। यद्यपि अगस्त्य मुनि ने महाराज इन्द्रद्युम्न को हाथी बनने का शाप दे डाला, किन्तु यह शाप अप्रत्यक्षः वरदान था क्योंकि हाथी का जीवन बिताने से उसके पूर्वजन्म के पापों के सारे फल समाप्त हो गये। हाथी-जीवन का अन्त होते ही वह भगवान् जैसा शरीर पाकर उनका पार्षद बनने के लिए वैकुण्ठ लोक भेज दिया गया। यह सारूप्य-मुक्ति कहलाती है।

श्रीशुक उवाच

एवं शप्त्वा गतोऽगस्त्यो भगवान्नृप सानुगः ।
 इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिर्दिष्टं तदुपधारयन् ॥ ११ ॥
 आपन्नः कौञ्जरीं योनिमात्मस्मृतिविनाशिनीम् ।
 हर्यर्चनानुभावेन यद्गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; शप्त्वा—शाप देने के बाद; गतः—उस स्थान को त्याग दिया; अगस्त्यः—अगस्त्य मुनि ने; भगवान्—इतने शक्तिशाली; नृप—हे राजा; स-अनुगः—अपने संगियों समेत; इन्द्रद्युम्नः—राजा इन्द्रद्युम्न; अपि—भी; राजर्षिः—यद्यपि वह राजर्षि था; दिष्टम्—विगत कर्मों के कारण; तत्—वह शाप; उपधारयन्—मानते हुए; आपन्नः—प्राप्त किया; कौञ्जरीम्—हाथी की; योनिम्—योनि; आत्म-स्मृति—अपनी याद; विनाशिनीम्—नष्ट करने वाली; हरि—भगवान्; अर्चन-अनुभावेन—पूजा करने के कारण; यत्—उस; गजत्वे—हाथी के शरीर में; अपि—यद्यपि; अनुस्मृतिः—अपनी विगत भक्ति को स्मरण करने का सुअवसर।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजा! अगस्त्य मुनि राजा इन्द्रद्युम्न को इस तरह शाप देने के बाद अपने शिष्यों समेत उस स्थान से चले गये। चूँकि राजा भक्त था अतएव उसने अगस्त्य मुनि के शाप का स्वागत किया क्योंकि भगवान् की ऐसी ही इच्छा थी। अतएव अगले जन्म में हाथी का शरीर प्राप्त करने पर भी भक्ति के कारण उसे यह स्मरण रहा कि भगवान् की पूजा और स्तुति किस तरह की जाती है।

तात्पर्य : भगवान् के भक्त की यह अद्वितीय स्थिति है। यद्यपि राजा को शाप मिला था, किन्तु उसने इसका स्वागत किया क्योंकि भक्त सदैव जानता रहता है कि भगवान् की इच्छा के बिना कुछ भी घटित नहीं हो सकता। यद्यपि राजा का कोई दोष न था, फिर भी अगस्त्य मुनि ने उसे शाप दे डाला और जब ऐसा हो गया तो राजा ने इसे अपने विगत दुष्कर्मों के कारण हुआ समझा। *तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः* (भागवत १०.१४.८)। यह भक्त के सोचने का व्यावहारिक उदाहरण है। वह जीवन की किसी भी असफलता को भगवान् का आशीर्वाद मानता है; अतएव वह इन असफलताओं से क्षुब्ध न होकर अपने भक्ति कार्यों में लगा रहता है और कृष्ण उसकी रक्षा करते हैं तथा भगवद्धाम वापस जाने में उसे सक्षम बनाते हैं। यदि भक्त को अपने विगत दुष्कर्मों के फल भोगने ही पड़ें तो भगवान् उसे इनका नाममात्र फल चखाकर तुरन्त ही उनसे मुक्त कर देते हैं। अतएव मनुष्य को भक्ति में दृढ़ रहना चाहिए। भगवान् स्वयं ऐसे व्यक्ति को बहुत जल्दी वैकुण्ठ लोक भेजने की व्यवस्था करेंगे। भक्त को कभी भी दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों से विक्षुब्ध नहीं होना चाहिए, अपितु भगवान् पर ही पूरी तरह आश्रित रहकर अपने नियमित कार्यक्रम में आगे बढ़ते रहना चाहिए। इस श्लोक में *उपधारयन्* शब्द

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ “विचार करते हुए” है, जो यह सूचित करता है कि भक्त जानता है कि कौन क्या है; वह समझता है कि इस भौतिक बद्ध जीवन में क्या हो रहा है।

एवं विमोक्ष्य गजयूथपमब्जनाभ-

स्तेनापि पार्षदगतिं गमितेन युक्तः ।

गन्धर्वसिद्धविबुधैरुपगीयमान-

कर्माद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विमोक्ष्य—उद्धार करके; गज-यूथ-पम्—हाथियों के राजा, गजेन्द्र को; अब्ज-नाभः—भगवान् जिनकी नाभि से कमल निकलता है; तेन—उसके (गजेन्द्र) द्वारा; अपि—भी; पार्षद-गतिम्—भगवान् के पार्षद का पद; गमितेन—पहले से प्राप्त; युक्तः—के साथ-साथ; गन्धर्व—गन्धर्व लोक के निवासी; सिद्ध—सिद्ध लोक के निवासी; विबुधैः—तथा बड़े-बड़े ऋषि मुनियों के द्वारा; उपगीयमान—महिमामंडित होकर; कर्म—जिसके कार्यकलाप; अद्भुतम्—आश्चर्यजनक; स्व-भवनम्—अपने धाम को; गरुड-आसनः—गरुड़ पर आसीन होकर; अगात्—लौट गये।

गजेन्द्र को घड़ियाल के चंगुल से तथा इस भौतिक संसार से जो घड़ियाल जैसा लगता है। घड़ियाल जैसे ही इस भौतिक जगत छुड़ाकर भगवान् ने उसे सारूप्य मुक्ति प्रदान की। भगवान् के अद्भुत दिव्य कार्यकलापों का यश बखान करने वाले गन्धर्वों, सिद्धों तथा अन्य देवताओं की उपस्थिति में, भगवान् अपने वाहन गरुड़ की पीठ पर बैठकर अपने अद्भुत धाम को लौट गये और अपने साथ गजेन्द्र को भी लेते गये।

तात्पर्य : इस श्लोक में *विमोक्ष्य* शब्द महत्त्वपूर्ण है। भक्त के लिए मोक्ष या मुक्ति का अर्थ है भगवान् के पार्षद का पद प्राप्त करना। निर्विशेषवादी ब्रह्म ज्योति में तल्लीन होने की मुक्ति से ही संतुष्ट रहते हैं, किन्तु भक्त के लिए मुक्ति का अर्थ भगवान् के तेज में तल्लीन होना नहीं, अपितु वैकुण्ठ लोक जाकर भगवान् का पार्षद बनना है। इस सम्बन्ध में *श्रीमद्भागवत* (१०.१४.८) में एक श्लोक है—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो

भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ।

हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत

यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥

“जो आपकी कृपा का इच्छुक है और इस तरह अपने विगत कर्मों के फल के कारण सभी विषम परिस्थितियों को सह लेता है, जो मन, वाणी तथा शरीर से आपकी भक्ति में सदा लगा रहता है और

सदैव आपको नमस्कार करता है, वह निश्चय ही मुक्ति का योग्य पात्र है।” जो भक्त इस भौतिक जगत में सब कुछ सहकर धैर्यपूर्वक भक्ति करता है, वह *मुक्तिपदे स दायभाक्* अर्थात् मुक्ति का प्रामाणिक पात्र होता है। *दायभाक्* शब्द भगवान् की कृपा के उत्तराधिकार को बताता है। भक्त को सांसारिक परिस्थितियों की परवाह न करके एकमात्र भक्ति में लगे रहना चाहिए। तब वह वैकुण्ठ लोक जाने का स्वतः अधिकारी बन जाता है। जो भक्त भगवान् की अनन्य भक्ति करता है उसे वैकुण्ठ लोक जाने का उसी तरह अधिकार प्राप्त होता है, जिस प्रकार पुत्र को अपने पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त होता है।

जब कोई भक्त मुक्ति पाता है, तो वह भौतिक कल्मष से छूट जाता है और भगवान् का दास नियुक्त हो जाता है। इसकी व्याख्या *श्रीमद्भागवत* (२.१०.६) में की गई है—*मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः। स्वरूप शब्द सारूप्य मुक्ति का सूचक है, जिसका अर्थ है भगवान् के धाम को वापस जाना और भगवान् के ही समान चतुर्भुजी आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करके, जो शंख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किये रहता है भगवान् का नित्य पार्षद बने रहना। निर्विशेषवादी तथा भक्त की मुक्ति में यही अन्तर है कि भक्त तुरन्त ही भगवान् का नित्य दास नियुक्त हो जाता है, जबकि निर्विशेषवादी *ब्रह्मज्योति* में विलीन होकर भी असुरक्षित रहता है और सामान्यतः इस भौतिक जगत में फिर गिर जाता है। *आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनाहत युष्मदङ्घ्रयः* (*भागवत* १०.२.३२)। यद्यपि निर्विशेषवादी, *ब्रह्मज्योति* तक उठकर, उसी में प्रवेश कर जाता है, किन्तु भगवान् की सेवा में न लगा होने के कारण पुनः भौतिकतावादी परोपकारी कार्यों के प्रति आकृष्ट होता है। इस तरह वह अस्पताल तथा शैक्षणिक संस्थान खोलने, गरीबों को भोजन कराने तथा इसी प्रकार की सांसारिक गतिविधियाँ सम्पन्न करने के लिए नीचे आता है जिन्हें वह भगवान् की सेवा करने की अपेक्षा अधिक मूल्यवान समझता है। *अनाहतयुष्मदङ्घ्रयः।* निर्विशेषवादी यह नहीं सोचते कि भगवान् की सेवा करना गरीब की सेवा करने या स्कूल अथवा अस्पताल खोलने की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है। यद्यपि वे यह कहते हैं कि *ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या*—अर्थात् ब्रह्म सत्य है और भौतिक जगत मिथ्या है—तो भी वे इस मिथ्या जगत की सेवा करने के अत्यन्त इच्छुक रहते हैं और भगवान् के चरणकमलों की सेवा की उपेक्षा करते हैं।*

एतन्महाराज तवेरितो मया
 कृष्णानुभावो गजराजमोक्षणम् ।
 स्वर्ग्यं यशस्यं कलिकल्मषापहं
 दुःस्वप्ननाशं कुरुवर्यं शृण्वताम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; महा-राज—हे राजा परीक्षित; तव—तुमसे; ईरितः—वर्णन किया गया; मया—मेरे द्वारा; कृष्ण-अनुभावः—भगवान् कृष्ण की असीम शक्ति (जिससे वे भक्त का उद्धार कर सकते हैं); गज-राज-मोक्षणम्—हाथियों के राजा की मोक्ष-प्राप्ति; स्वर्ग्यम्—स्वर्गलोक के लिए प्रोन्नति; यशस्यम्—भक्त के रूप में अपनी ख्याति बढ़ाने; कलि-कल्मष-अपहम्—कलियुग के कल्मष को कम करने; दुःस्वप्न-नाशम्—बुरे स्वप्नों के कारणों का निराकरण करने; कुरु-वर्य—हे कुरुश्रेष्ठ; शृण्वताम्—इस कथा के सुनने वालों को ।

हे राजा परीक्षित! अब मैंने तुमसे कृष्ण की अद्भुत शक्ति का वर्णन कर दिया है, जिसे भगवान् ने गजेन्द्र का उद्धार करके प्रदर्शित किया था। हे कुरुश्रेष्ठ! जो लोग इस कथा को सुनते हैं, वे उच्चलोकों में जाने के योग्य बनते हैं। इस कथा के श्रवण मात्र से वे भक्त के रूप में ख्याति अर्जित करते हैं, वे कलियुग के कल्मष से अप्रभावित रहते हैं और कभी दुःस्वप्न नहीं देखते।

यथानुकीर्तयन्त्येतच्छ्रेयस्कामा द्विजातयः ।
 शुचयः प्रातरुत्थाय दुःस्वप्नाद्युपशान्तये ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

यथा—विचलित हुए बिना; अनुकीर्तयन्ति—कीर्तन करते हैं; एतत्—गजेन्द्र मोक्ष की यह कथा; श्रेयः-कामाः—अपना कल्याण चाहने वाले; द्वि-जातयः—ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जाति वाले; शुचयः—विशेषतया ब्राह्मण, जो सदा स्वच्छ रहते हैं; प्रातः—प्रातःकाल; उत्थाय—निद्रा से उठकर; दुःस्वप्न-आदि—रात्रि में ठीक से नींद न आने; उपशान्तये—सारे कष्टों को शमन करने के लिए ।

अतएव जो लोग अपना कल्याण चाहते हैं—विशेष रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य और इनमें से भी मुख्यतः ब्राह्मण वैष्णव—उन्हें प्रातःकाल बिस्तर से उठकर अपने दुःस्वप्नों के कष्टों को दूर करने के लिए इस कथा का बिना विचलित हुए यथारूप पाठ करना चाहिए।

तात्पर्य : वैदिक साहित्य का और विशेषतया श्रीमद्भागवत तथा भगवद्गीता का प्रत्येक श्लोक वैदिक मंत्र है। यहाँ पर प्रयुक्त यथानुकीर्तयन्ति शब्दों से यह संस्तुति की गई है कि इस साहित्य को यथारूप में प्रस्तुत किया जाये। किन्तु ढोंगी लोग वास्तविक कथा से हटकर अपने व्याकरणिक वाग्जाल से मूल पाठ का मनमाना अर्थ लगाते हैं। इस तरह के हेरफेर से बचना चाहिए। यह वैदिक आदेश है,

जिसका समर्थन श्री शुकदेव गोस्वामी जैसे महा-जन द्वारा किया गया है। वे कहते हैं—
यथानुकीर्तयन्ति—मनुष्य को चाहिए कि कोई फेर-बदल किए बिना मंत्र का यथारूप पाठ करे क्योंकि तब उसे सौभाग्य के पद तक उठने की योग्यता प्राप्त हो सकेगी। शुकदेव गोस्वामी ने तो विशेष संस्तुति की है कि ब्राह्मण लोग इन सभी मंत्रों का पाठ प्रातःकाल शय्या से उठते ही करें।

पापपूर्ण कर्मों के कारण हमें रात में दुःस्वप्न आते हैं, जो अत्यन्त कष्टप्रद होते हैं। महाराज युधिष्ठिर को तो भगवद्भक्ति में थोड़े से विचलन के कारण नरक-दर्शन करना पड़ा था। अतएव दुःस्वप्न पापपूर्ण कार्यों के फलस्वरूप आते हैं। भक्त कभी-कभी किसी पापी व्यक्ति को अपना शिष्य बना लेता है और अपने शिष्य से स्वीकार किए गए पापकर्मों के फल को समाप्त करने के लिए भक्त को बुरे स्वप्न देखने पड़ते हैं। फिर भी गुरु इतना दयालु होता है कि अपने पापी शिष्य के कारण दुःस्वप्न देखने पर भी वह इस कष्टदायक कार्य को कलियुग के भुक्त भोगियों का उद्धार करने के लिए स्वीकार करता है। अतएव दीक्षा के बाद शिष्य को सतर्क रहना चाहिए कि वह फिर से कोई पापपूर्ण कर्म न करे जिससे स्वयं उसे तथा उसके गुरु को कठिनाई उठानी पड़े। अतएव सच्चा शिष्य अर्चाविग्रह, अग्नि, गुरु तथा वैष्णवों के समक्ष वचन देता है कि वह सभी पापपूर्ण कार्यों से दूर रहेगा। इसलिए उसे पुनः पापपूर्ण कृत्य करके कठिन परिस्थिति उत्पन्न नहीं कर लेनी चाहिए।

इदमाह हरिः प्रीतो गजेन्द्रं कुरुसत्तम ।

शृण्वतां सर्वभूतानां सर्वभूतमयो विभुः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

इदम्—यह; आह—कहा; हरिः—भगवान् ने; प्रीतः—प्रसन्न होकर; गजेन्द्रम्—गजेन्द्र से; कुरु-सत्-तम—हे कुरुवंश में सर्वश्रेष्ठ; शृण्वताम्—सुनते हुए; सर्व-भूतानाम्—हरएक की उपस्थिति में; सर्व-भूत-मयः—सर्वव्यापी भगवान् ने; विभुः—महान्।

हे कुरुश्रेष्ठ! इस प्रकार हरएक के परमात्मा अर्थात् भगवान् ने प्रसन्न होकर सबों के समक्ष गजेन्द्र को सम्बोधित किया। उन्होंने निम्नलिखित आशीष दिए।

श्रीभगवानुवाच

ये मां त्वां च सरश्चेदं गिरिकन्दरकाननम् ।

वेत्रकीचकवेणूनां गुल्मानि सुरपादपान् ॥ १७ ॥
 शृङ्गाणीमानि धिष्ण्यानि ब्रह्मणो मे शिवस्य च ।
 क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम् ॥ १८ ॥
 श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम ।
 सुदर्शनं पाञ्चजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ॥ १९ ॥
 शेषं च मत्कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं मदाश्रयाम् ।
 ब्रह्माणं नारदमृषिं भवं प्रह्लादमेव च ॥ २० ॥
 मत्स्यकूर्मवराहाद्यैरवतारैः कृतानि मे ।
 कर्माण्यनन्तपुण्यानि सूर्यं सोमं हुताशनम् ॥ २१ ॥
 प्रणवं सत्यमव्यक्तं गोविप्रान्धर्ममव्ययम् ।
 दाक्षायणीधर्मपत्नीः सोमकश्यपयोरपि ॥ २२ ॥
 गङ्गां सरस्वतीं नन्दां कालिन्दीं सितवारणम् ।
 ध्रुवं ब्रह्मऋषीन्सप्त पुण्यश्लोकांश्च मानवान् ॥ २३ ॥
 उत्थायापररात्रान्ते प्रयताः सुसमाहिताः ।
 स्मरन्ति मम रूपाणि मुच्यन्ते तेऽहसोऽखिलात् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच— भगवान् ने कहा; ये—जो; माम्—मुझको; त्वाम्—तुमको; च—भी; सरः—झील, तालाब; च—भी; इदम्—यह; गिरि—(त्रिकूट) पर्वत; कन्दर—गुफाएँ; काननम्—उद्यान; वेत्र—बेंत; कीचक—खोखला बाँस; वेणूनाम्—अन्य प्रकार के बाँस के; गुल्मानि—समूह, कुंज; सुर-पादपान्—स्वर्गिक वृक्ष; शृङ्गाणि—चोटियाँ; इमानि—ये; धिष्ण्यानि—घर, धाम; ब्रह्मणः—ब्रह्मा को; मे—मेरा; शिवस्य—शिव का; च—भी; क्षीर-उदम्—दुग्धसागर; मे—मेरा; प्रियम्—अत्यन्त प्रिय; धाम—स्थान; श्वेत-द्वीपम्—श्वेत द्वीप नामक; च—भी; भास्वरम्—आध्यात्मिक किरणों से सदैव चमचमाता; श्रीवत्सम्—श्रीवत्स नामक चिह्न; कौस्तुभम्—कौस्तुभ मणि; मालाम्—माला; गदाम्—गदा; कौमोदकी नामक; मम—मेरा; सुदर्शनम्—सुदर्शन चक्र; पाञ्चजन्यम्—पाञ्चजन्य नामक शंख; सुपर्णम्—गरुड़; पतग-ईश्वरम्—पक्षी-राज; शेषम्—शेष नाग नामक आसन; च—तथा; मत्-कलाम्—मेरा अंश; सूक्ष्मम्—अत्यन्त सूक्ष्म; श्रियम् देवीम्—सम्पत्ति की देवी को; मत्-आश्रयाम्—मुझ पर आश्रित; ब्रह्माणम्—ब्रह्माजी को; नारदम् ऋषिम्—नारद ऋषि को; भवम्—शिवजी को; प्रह्लादम् एव च—तथा प्रह्लाद को भी; मत्स्य—मत्स्य अवतार; कूर्म—कूर्म अवतार; वराह—वराह अवतार; आद्यैः—आदि; अवतारैः—विभिन्न अवतारों के द्वारा; कृतानि—किये गये; मे—मेरे; कर्माणि—कार्यकलाप; अनन्त—असीम; पुण्यानि—शुभ, पवित्र; सूर्यम्—सूर्यदेव को; सोमम्—चन्द्र देव को; हुताशनम्—अग्निदेव को; प्रणवम्—ओंकार मंत्र को; सत्यम्—परम सत्य को; अव्यक्तम्—सम्पूर्ण भौतिकशक्ति को; गो-विप्रान्—गायों तथा ब्राह्मणों को; धर्मम्—भक्ति को; अव्ययम्—अव्यय; दाक्षायणीः—दक्ष की पुत्रियाँ; धर्म-पत्नीः—वैध्य पत्नियाँ; सोम—चन्द्र देव की; कश्यपयोः—तथा कश्यप ऋषि की; अपि—भी; गङ्गाम्—गंगा नदी को; सरस्वतीम्—सरस्वती नदी को; नन्दाम्—नन्दा नदी को; कालिन्दीम्—यमुना नदी को; सित-वारणम्—ऐरावत हाथी को; ध्रुवम्—ध्रुव महाराज को; ब्रह्म-ऋषीन्—बड़े-बड़े ऋषियों को; सप्त—सात; पुण्य-श्लोकान्—अत्यन्त पवित्र; च—तथा; मानवान्—मनुष्यों को; उत्थाय—उठकर; अपर-रात्र-अन्ते—रात्रि के अन्त में; प्रयताः—अत्यन्त सतर्क रहकर; सु-समाहिताः—एकाग्र चित्त से; स्मरन्ति—स्मरण करते हैं; मम—मेरे; रूपाणि—रूपों को; मुच्यन्ते—छूट जाते हैं; ते—ऐसे पुरुष; अहसः—पापकर्मों के फल से; अखिलात्—सभी प्रकार के।

भगवान् ने कहा : समस्त पापपूर्ण कर्मों के फलों से ऐसे व्यक्ति मुक्त हो जाते हैं, जो रात्रि बीतने पर प्रातःकाल ही जग जाते हैं, अत्यन्त ध्यानपूर्वक अपने मनो को मेरे रूप, तुम्हारे रूप, इस सरोवर, इस पर्वत, कन्दराओं, उपवनों, बेंत के वृक्षों, बाँस के वृक्षों, कल्पतरु, मेरे, ब्रह्मा तथा शिव के निवास स्थानों, सोना, चाँदी तथा लोहे से बनी त्रिकूट पर्वत की तीन चोटियों, मेरे

सुहावने धाम (क्षीरसागर), आध्यात्मिक किरणों से नित्य चमचमाते श्वेत द्वीप, मेरे चिन्ह श्रीवत्स, कौस्तुभ मणि, मेरी वैजयन्ती माला, कौमोदकी नामक मेरी गदा, मेरे सुदर्शन चक्र, तथा पाञ्चजन्य शंख, मेरे वाहन पक्षीराज गरुड़, मेरी शय्या शेषनाग, मेरी शक्ति का अंश लक्ष्मीजी, ब्रह्मा, नारद मुनि, शिवजी, प्रह्लाद, मेरे सारे अवतारों यथा मत्स्य, कूर्म तथा वराह, मेरे अनन्त शुभ कार्यकलापों में जो सुनने वाले को पवित्रता प्रदान करते हैं, मेरे सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, ओङ्कार मंत्र, परम सत्य, समग्र भौतिक शक्तियों, गायों तथा ब्राह्मणों में, भक्ति, सोम तथा कश्यप की पत्नियों में जो राजा दक्ष की पुत्रियाँ हैं, गंगा, सरस्वती, नन्दा तथा यमुना नदियों, ऐरावत हाथी, ध्रुव महाराज, सप्तर्षि तथा पवित्र मनुओं में एकाग्र करते हैं।

ये मां स्तुवन्त्यनेनाङ्ग प्रतिबुध्य निशात्यये ।
तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विपुलां गतिम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

ये—जो; माम्—मुझको (मेरी); स्तुवन्ति—प्रार्थना करते हैं; अनेन—इस प्रकार; अङ्ग—हे राजा; प्रतिबुध्य—जगकर; निश-
अत्यये—रात्रि के अन्त में; तेषाम्—उनके लिए; प्राण-अत्यये—मृत्यु के समय; च—भी; अहम्—मैं; ददामि—देता हूँ;
विपुलाम्—नित्य, असीम; गतिम्—वैकुण्ठ लोक को स्थानान्तरण।

हे प्रिय भक्त! जो लोग रात्रि बीतने पर बिस्तर से उठकर तुम्हारे द्वारा अर्पित इस स्तुति से मेरी प्रार्थना करते हैं मैं उन्हें उनके जीवन के अन्त में वैकुण्ठ लोक में नित्य आवास प्रदान करता हूँ।

श्रीशुक उवाच

इत्यादिश्य हृषीकेशः प्राध्माय जलजोत्तमम् ।
हर्षयन्विबुधानीकमारुरोह खगाधिपम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; आदिश्य—उपदेश देकर; हृषीकेशः—हृषीकेश नाम से
विख्यात भगवान्; प्राध्माय—बजाकर; जल-ज-उत्तमम्—जलचरों में उत्तम, शंख; हर्षयन्—प्रसन्न करते; विबुध-अनीकम्—
देवताओं के समूह को, जिसमें ब्रह्मा तथा शिव प्रमुख हैं; आरुरोह—चढ़ गये; खग-अधिपम्—गरुड़ की पीठ पर।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस उपदेश को देकर हृषीकेश भगवान् ने अपना पाञ्चजन्य शंख बजाया और इस प्रकार ब्रह्मा इत्यादि सारे देवताओं को हर्षित किया। तब वे अपने वाहन गरुड़ की पीठ पर चढ़ गये।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत “गजेन्द्र का वैकुण्ठ गमन” नामक चौथे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।